P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

आधुनिक हिन्दी कथा लेखन में अस्तित्ववाद के आयाम : एक अध्ययन

कुसुमलता
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
देवबन्द, (सहारनपुर), उ0प्र0,
भारत

सारांश

मनुष्य उद्योगशील है। वह स्वयं उद्देश्य निश्चित करके अपने जीवन को सार्थक कर सकता है तथा निरर्थक बाह्य संसार को एक अर्थ देता है। मानव शिक्षा–दीक्षा, ज्ञान चेतना एवं कठोर परिश्रम के माध्यम से अपने अस्तित्व की सुरक्षा स्वयं करता है। मानव–समाज में प्रतिष्ठित प्रत्येक क्षेत्र का अपना पृथक अस्तित्व है। साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। अपितु अस्तित्व के साथ–साथ वाद (बोध) के रूप में विकसित हो रहा है। अस्तित्व यूरोप की एक दार्शनिक विचारधारा है और साहित्य की आधुनिक चिंतन पद्धति आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में अस्तित्ववाद की प्रासंगिकता महानगरीय परिवेश में रचे–बचे पाश्चात्य संस्कृति से परिपूर्ण मूल्य एवं निज की अन्तरानुभूति को रेखांकित करती है। आधुनिक कालीन जटिल और विकट परिस्थितियों के प्रभावाधीन मानव जब अपने अस्तित्व के विषय में विचार करता है तो वह अपने स्वयं के अस्तित्व के चारों तरफ से प्रश्न चिन्हों में घिरा हुआ पाता है। वह इन परिस्थितियों का विवेचन विश्लेषण करने के उपरांत द्वन्द्व, कुण्ठा, घुटन संत्रास, भय, मृत्युबोध आदि मनोवैज्ञानिक विकृतियों से जूझता है। मानव मन की इन्ही मनोविकृतियों को प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी कथासाहित्य के अन्तर्गत सूक्ष्म रूप से आंकने का लघु प्रयास है और शोध पत्र का लक्ष्य भी।

मुख्य शब्द : कुंठा, मृत्युबोध, संत्रास, मनोविकृतियां, क्षण, अस्तित्व संघर्ष, आत्मबोध, यथार्थवादी दृष्टि, शून्यता, अवसाद।

प्रस्तावना

अस्तित्व शब्द का अभिप्राय है– मौजूदगी, उपस्थिति। मानव मूल्य परक शब्दावली विश्वकोष के अनुसार अस्तित्व शब्द अस (भुवि) + तिय , अस्ति + त्व , अस्ति पद के साथ भाववाचक 'त्व' प्रत्यय से जुडकर बनता है। वास्तव में, जब व्यक्ति को अस्तित्वबोध होता है तब वह जानता है कि वह केवल साँस लेने वाली धौंकनी नहीं है। उसके जीवन का उद्देश्य है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे जीवन को साधन बनाना पड़ता है। यह सोचना ही जीवन का उदान्त पक्ष है। इसी से मनुष्य की सार्थकता प्रकट होती है।''[1] अतः अस्तित्व मानव जीवन के साथ जुडा वह भाव है जिसका सम्बन्ध उसकी सार्थकता से है।

लाल चन्द गुप्त मंगल अस्तित्व शब्द को परिभाषित करते हुए कहते है कि ''अस्तित्व शब्द अंग्रेजी के एक्जिस्टेंस शब्द का पर्यायवाची है। साधारण भाषा में इन्द्रिय–सुलभ प्रत्येक उपस्थिति को अस्तित्वपूर्ण कहा जा सकता है''[2]

मूलतः अस्तित्ववाद शब्द एक वाद के रूप में डेनिश दार्शनिक किर्केगार्ड के मुहावरे 'एग्जेस्टेसियल डाइलेक्टक' से लिया गया है। अस्तित्ववाद को जर्मन भाषा में 'एग्जिस्टेन्ज' कहते है जिसका अर्थ है– अस्तित्व के प्रति मोह उत्पन्न होना। अस्तित्ववाद के संदर्भ में विभिन्न विद्धानों ने भिन्न–भिन्न मत दिये जिनमें से कुछ इस प्रकार है–

''अस्तित्व का प्रयोजन है कि मनुष्य की 'स्व' के प्रति उदासीनता दूर करके उसकी आत्मिकता को जाग्रत करना तथा उसे 'स्व' के प्रति चेतन बनाना और मानव ज्ञान के तहत एक नये विश्लेषण की ओर मनुष्य को अभिमुख करना''[3] जुलियन ब्रेन्दा के अनुसार 'अस्तित्ववाद भाव तथा विचार के प्रति जीवन का विद्रोह है।''[4]

डॉ0 विजय मोहन सिंह ने अस्तित्ववाद को चिन्तन के क्रियान्वयन का दर्शन माना है। उन्होंने लिखा है कि– अस्तित्ववाद एक क्रियात्मक दर्शन है यानि वह अन्य पारम्परिक दर्शन शास्त्रों की तरह अमूर्त सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है। वह एक्शन का दर्शन है, जिसका प्रत्येक सूत्र जीवन की क्रिया और

जीवन पद्धति से जुडा हुआ है। वह चिंतन का शास्त्र नहीं बल्कि चिंतन के क्रियान्वयन का दर्शन है। ''[5]

Britannica Concise Encyclopedia के अनुसार ''अस्तित्ववाद एक ऐसा दार्शनिक आन्दोलन है जो दो मुख्य विचारधाराओं पर आधारित है प्रथम, मानवीय अस्तित्व का विश्लेषण द्वितीय, मानवीय चुनाव स्वातन्त्रय। जे0पी0 सार्त्र मानवीय अस्तित्व का मूल मानवीय स्वतंत्रता मानते है''[6]

वास्तव में, अस्तित्ववाद मानव जीवन के जीवित संदर्भ का चिंतन करता है तथा धर्म, आस्था, सामाजिकता का तीव्र विरोध करता है जबकि मृत्यु, दुख, निराशा, वेदना, त्रास और भोग आदि को स्वेच्छा से स्वीकार करता। अतः अस्तित्ववाद जीवन सार के पूर्ण अस्तित्व के होने की महत्ता का प्रतिपादन करता है।

अस्तित्ववाद की पृष्ठभूमि

'अस्तित्ववादी' विचारधारा का उद्‌गम–स्त्रोत सर्वप्रथम जर्मनी, फ्रांस और इटली में हुआ। इसके पश्चात यह संसार के अन्यान्य देशों में एक प्रमुख अवधारणा के रूप में विकसित हुई। अस्तित्ववाद के मूल प्रवर्तक डेनिश विद्वान सीरेन किर्केगार्ड है। इसके बाद नीत्से, कार्ल यास्पर्स, मार्टिन हैडेगर, ग्रेवील मार्शल, ज्यांपाल सार्त्र, अलबर्ट कामू तथा दोस्तोवस्की आदि अस्त्विवादियों ने इसे मनोविज्ञान के तर्कज्ञान पर विकसित करने का सार्थक प्रयास किया है। इन्होंने मानव जीवन के स्व बोध से सम्बन्धित सूक्ष्म से सूक्ष्म मानक को निर्धारित किया। इन विचारकों द्वारा अस्तित्ववादी विचारधारा की प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठित करने के विषय में डॉ0 शिव प्रसाद सिंह का कथन अक्षरतः सत्य है – ''किर्केगार्ड नीत्से, सार्त्र और दोस्तोंवस्की ने सत्य को वैयक्तिक अनुभव की वस्तु माना है और इन्होंने अस्तित्व के ऊपर आरोपित सभी आवरणों को चाहे वह धर्म, समाज, राज्य, दर्शन अथवा नैतिकता से ही उत्पन्न क्यों न हो, विदीर्ण करने का प्रयत्न किया, जिससे व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली और जीवन को नई दृष्टि''[7]।

सही अर्थों में अस्तित्वादी विचारधारा किर्केगार्ड एवं नीत्से के प्रभाव से लगभग सन 1920–25 ई0 तक फैलने लगी थी। बीसवीं सदी के चौथे दशक में सार्त्र का मनोविज्ञान तथा कामू की विचारधाराएं भी प्रकाश में आयी। हाँ, यह सत्य है कि सन 1855 में डेनमार्क के धर्म चिंतक किर्केगार्ड की मृत्यु के बाद भी छः–सात दशक तक किसी व्यक्ति विशेष का इस और ध्यान नहीं गया कि किर्केगार्ड कौन थे? और क्या लिख गये है ? किन्तु यही वह समय था जब मानव जीवन पर एक ओर औद्योगिक क्रान्ति एवं मशीनीकरण का प्रभाव पूर्णतया परिलक्षित होने लगा था दूसरी और ईश्वर संबंधी परंपरागत अवधारणायें भी संशयों की परिधि में आ चुकी थी। मानव मस्तिष्क असमान और पृथक–पृथक विचारधाराओं के मध्य दोलयित था, वैज्ञानिकता तथा परंपरागत विचारों के भार को वहन करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा था। इस भार को उतार फेंककर मानव–मस्तिष्क स्वतंत्र वातावरण में अपनी वैयक्ति विचारधारा को विकसित करने की तलाश में किर्केगार्ड के चिंतन के पास आ पहुंचा और यही से अस्तित्वाद ने अपने अस्तित्व को नया आयाम दिया। इसके विषय में स्वयं सार्त्र ने लिखा है– ''अस्तित्वाद का जन्म हेगल के चिंतन के विरूद्ध की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ''[8]

सार्त्र ने सन 1946 में अपने विख्यात भाषण 'अस्तित्ववाद और मानवतावाद' जो बाद में अस्तित्ववाद मानववाद है' पुस्तक के रूप में छपा है। अस्तित्वाद और मानवतावाद पर अपने विचार प्रकट करते हुए सार्त्र ने कहा– ''मानवीयता नाम की कोई ईश्वर–निर्मित वस्तु नहीं है। ईश्वरहीन संसार में मनुष्य अपनी मानवीयता स्वयं गढ़ता है। वह जब अपना उद्‌देश्य निश्चित करता है तब उसके द्वारा अपना हित ही नहीं करता बल्कि उद्‌देश्य का निश्चय मानव मात्र के लिए हितकर होता है। अपने इस विराट दायित्व बोझ के कारण ही उसे तीव्र वेदना का अनुभव होता है। मनुष्य के आत्मगत मान के अलावा मूल्य–निर्धारण की ओर कोई कसौटी नहीं है। मनुष्य संसार में अकेला है। अपने अलावा वह किसी पर निर्भर नहीं हो सकता। उसे अपना भाग्य स्वयं निर्मित करना है। मनुष्य की यह नियति है कि वह अपना उद्‌देश्य स्वयं निश्चित करे। उद्‌देश्य में प्रतिबद्ध होना आवश्यक है, मनुष्य जैसा निर्णय करेंगे सामाजिक परिस्थिति वैसी ही होगी ''[9]

आधुनिक युग प्रत्येक क्षेत्र में आमूल–चूल परिवर्तन का युग माना जाता है। इन्ही परिवर्तनों ने अस्तित्ववादी दर्शन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। इन परिवर्तनों के लिए निम्नलिखित कारण है –

1. फ्रांस की राज्य क्रांति
2. प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध
3. वैज्ञानिक विकास के कारण पूर्ववर्तों मान्यताओं के प्रति मानव का अनास्था भाव।

हिन्दी कथा लेखन में अस्तित्ववाद के प्रमुख आयाम

अस्तित्ववाद पाश्चात्य जगत की दार्शनिक विचारधारा के साथ–साथ आधुनिक साहित्य की प्रमुख चिंतन पद्धति है। प्रथम विश्वयुद्ध के आस–पास जर्मन और फ्रांस के चिंतकों एवं साहित्यकारों ने इसे अपनाकर निजी दृटि की व्यावस्था की है। वास्तव में, अस्तित्ववादी लेखक काल्पनिक साहित्य सृजन में विश्वास नहीं करता उनकी दृष्टि घनिष्ट रूप में सम्भव है। मानव मुक्ति में उनकी अदूर आस्था है। इस साहित्य चिंतन का प्रारम्भ सार्त्र से होता है। जिसका अनुसरण बाद में बहुत से लेखकों ने किया। इन लेखकों में से बहुतों ने एक ओर तो शुद्ध साहित्य को रचना की और दूसरी और शुद्ध दार्शनिक स्तर पर अस्तित्ववादी विचारधारा को स्थापित करने का प्रयास किया।

स्वतंत्रता पश्चात भारतीय परिस्थितियां बिल्कुल बदल गयी। इन बदली हुयी परिस्थितियों के बीच हर व्यक्ति को अपना अस्तित्व सिमटता हुआ दिखायी दिया। फलतः अस्तित्ववादी विचार धारा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अस्तित्ववादी विचारधारा के भारतीय भूमि में अवतरित होने तथा घुलने–मिलने के संदर्भ में नरेन्द्र सिंह लिखते है– ''भले ही अस्तित्ववाद का जन्म पश्चिम में हुआ लेकिन स्वतंत्रयोत्तर भारत की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने इसे भारत की जमीन पर खाद–पानी उपलब्ध करा दिया''[10]

अस्तित्ववाद के प्रमुख आयाम (बोध)

अस्तित्ववादी अवधारणा के प्रमुख प्रेरक आयाम हिन्दी कथा साहित्य में अस्तित्तववादी से प्रभावित साहित्यकारों का एक विशिष्ट वर्ग है। इसमें सर्व प्रमुख है अज्ञेय, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती गंगा प्रसाद विमल, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, प्रभाखेतान, राजी सेठ, निरूपमा सेवती, सूर्यबाला एवं कुसुम अंसल आदि लेखक लेखिकाओं ने अस्तित्वबोध के विविध रूपों को अपने लेखन में अस्तित्वबोध के द्वारा व्यक्ति किया है। इन्ही अस्तित्वबोध के प्रेरक आयामों को हम निम्नलिखित बोध के माध्यम से व्यक्त कर रहे है, जो निम्नलिखित चित्र में अंकित है–

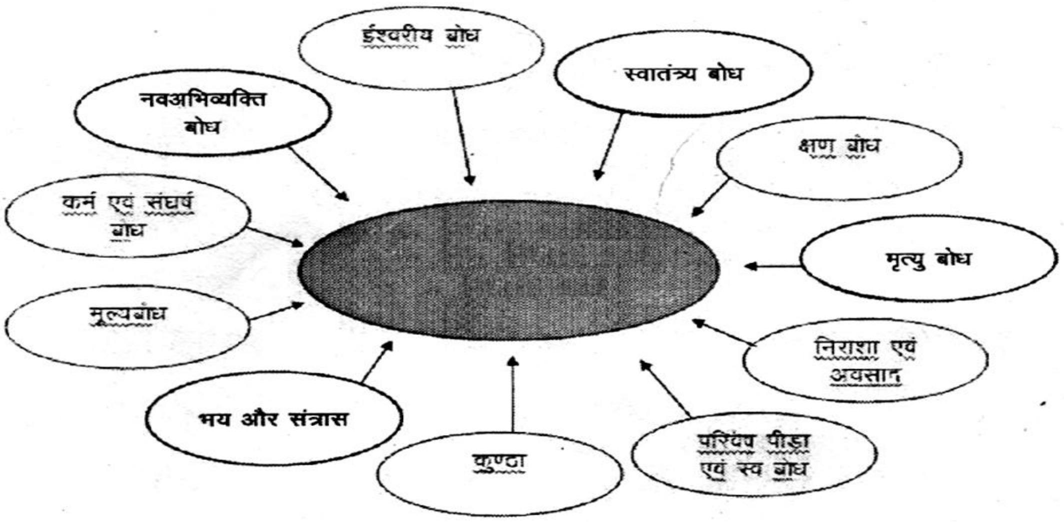

अस्तित्ववादी प्रमुख बोध (आयाम)

स्वातंत्रय बोध

अस्तित्ववादी के लिए स्वतंत्रता सर्वोपरि है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह साहस एवं आस्था के साथ अपने लिए सर्वोत्तम निर्णय करें। यही निर्णय उसके अस्तित्व की रक्षा करता है। चूंकि स्वतंत्रता में ही मानव समाज अपनी संभावनाएं प्रकट करता है। निरूपमा सेवती ने अपनी कहानी ''सब में से एक'' में नारी स्वतंत्रता का चित्रण कुछ इस प्रकार किया है कि ''बडा अच्छा हुआ जो तुमने बंधी बंधायी पुरानी सड़ांध से खुद को निकाल लिया। यह तो कोई बात नहीं हुई कि तुम जैसी स्वतंत्र लड़की पर माँ–बाप की इच्छा वाली बरसों पहले हुई सगाई को लाद दिया जाये।''[11]

स्वतंत्रता व्यक्ति के विवेक को जाग्रत करती है विवेक जाग्रत होने पर ही वह एक ठोस निर्णय लेता है। उपन्यास 'आवां' की नायिका नमिता श्रमिक नेता अन्ना साहब के कुचारण के कारण घर की विषम परिस्थितियों के बावजूद नौकरी छोड़ देती है। इस पर पिता देवी शंकर पांडेय कहते है ''मुझे खुशी है कि तुमने पहली बार अपने विषय में स्वतंत्र निर्णय लिया'' विवेक जाग्रत है तुम्हारा जाग्रत ही रखना। मैं तुमसे हरगिज नहीं पूछूंगा कि तुम वहां नौकरी क्यों नहीं करना चाहती? निश्चित होकर सो जाओ– नये भोर की प्रतीक्षा में जिसे कोई सूर्य नहीं स्वयं आदमी गढ़ता है।''[12]

आज स्त्री हर स्तर पर स्वतंत्र होकर जीना चाहती है। 'हरी बिन्दी' कहानी नारी के स्वतन्त्र जीवन यापन करने की आकांक्षा को आधार बनाकर लिखी गयी कहानी है। लेखिका मृदुला गर्ग ने इस कहानी की नायिका के स्वच्छन्द विचारों का चित्रांकन इस प्रकार किया है कि ''उसे लगा वह जीवन में पहली बार ऐसे इंसान के साथ बैठी है जो यह नहीं जानना चाहता है कि उसके पति है या नहीं ओर है तो क्या काम करते है।''[13]

जीवन की विषम परिस्थितयाँ और अस्तित्व संघर्ष

अस्तित्वमय जीवन की नियति है जब तक जीवन है तब तक संघर्ष है। इस संदर्भ में डॉ0 विनय का कथन है कि स्थिति चाहे जितनी विस्फोटक हो, हम इसी में जी रहे है, प्रेम कर रहे है। घृणा और मित्रता के पात्र बन रहे है परिवार टूट रहे है, फिर भी परिवार है। भूगोल बदल रहे है फिर भी जन्मभूमि, देश, राष्ट्र जैसे अवधारात्मक पदोर्थों का जीवन महत्व है। सत्य दोनो और है पक्ष में भी विपक्ष में भी।''[14]

इसी मानवी संकट का लेखिका मुदगल ने 'एक जमीन अपनी' उपन्यास में नीता के माध्यम से अस्तित्व संघर्ष को इस प्रकार प्रकट किया है ''मुक्त मनुष्य अनाथ नहीं होगा। समाज में रूढ़ि नियम धर्म के घोर अनुशासन से आबद्ध होकर क्या जीना इतना ही कर अमानवीय नहीं है। तब जीना कठिन होगा उसके लिए तो वह मनुष्य के अस्तित्व की स्वायता का संघर्ष होगा। कम से कम पिंजडे की दारूण अपेक्षाओं से तो मुक्त होगा जो वर्तमान समाज में व्यक्ति को अपने होने की कीमत के रूप में रोज दर–रोज मरते हुए चुकानी पड़ती है''[15] स्त्री के अस्तित्व की पहचान है। पुरूष ही नारी के अस्तित्व का सबसे बडा

संकट है। इस संदर्भ में निरूपमा सेवती का कथन है कि ऑफ अहंता के चरम को समेटे रखने वाले ये पुरूष भी कितने सिर–फिरे होते है अपने को बचाव–बचाये रखने वाली लड़कियों के पीछे भागना और उन्हे जीतना कितना बडा मनोरंजक खेल लगता है। इन्हे रोज–रोज प्रेमिकायें बदलने वाले, पत्नियों को भ्रम में रखने वाले और बिस्तर की संगनियां खरीदने वाले, हर चीज में धाधकी कर दूसरों को कुचल खुद बडे बन जाने वाले ये लोग आखिर लड़की की शीलमयता या शीलमंगता के प्रति इतने भावुक क्यो हो जाते है? असंस्कृति में खोकर लड़कियों को संस्कृति की सूली पर चढ़ाने की ईमानदारी कहां से आ जाती है इनमें।'' [16]

परिवेश पीड़ा एवं आत्मबोध

आधुनिक मनुष्य को सबसे पहले अपने परिवेश से लडना पड़ता है। दूसरी तरफ उसे पुरातन व्यवस्था से लड़ना पडता है फिर अपने जीवन के अभाव से लड़ना पडता है। इस चहुतरफा लड़ाई में वह बहुत बार निराश भी होता है। अपने दम घोटू वातावरण से वह उठता है और इस तरह से उसे उसके भीतर निराश और स्वबोध की मानस्थिति पैदा हो जाती है।''[17] आधुनिक युग की सुविधा भोगी शीफी जिन्दगी में व्यक्ति घर और बाहर की दोहरी मार झेलते हुए अपने अस्तित्व से अपरिचित हो गया है। जहां उसे सारा का सारा अपनापन और उत्साह केवल दिखावा लगता है। चित्रा मुदगल ने कहानी 'पाली का आदमी में नायक रवि की इसी मानसिकता का वर्णन किया है–'' अब वह सीढ़ियां चढने का आदी न रहा, न उतरने का। अपनी ताकत का इस्तेमाल उसने बंद कर दिया। वह लिफ्ट से आता–जाता है। कितनी ऊंचाई पर है उसका घर उस घर में खड़े होकर वह सबसे ऊपर उठता है। यहां तक कि सडकों पर गुजरती हुई भीड उसे आदमियों की न होकर कीड़े–मकोड़े की लगती है। जो अपने गंतव्य की ओर चल नहीं रही, रेंग रही है।''[18] परिवेश पीड़ा व्यक्ति को दुःख ही नहीं देती अपितु स्वयं के ज्ञान का अवसर भी प्रदान करती है। उपन्यास ''एक जमीन अपनी'' में लेखिका कंपनियों की अनुभूति के विषय में लिखा है कि तकलीफों की शायद यही कसौटी होती है। वह व्यक्ति की संवेदना को अपार सहिष्णु और अधिक व्यापक बना देती है या फिर भोंथरा। विभिन्न लेकिन अंकू का संघर्ष उसे इस खतरे से बाल–बाल बचाव ले गया है। कभी–कभी अवश्य महसूस होता है कि बाहर से जो कुछ सधा उबरा, निथर आया अनुभव हो रहा है उसके भीतर की तहें अब भी गीली है बडा स्वाभाविक है। ''[19]

ईश्वरीय बोध

जगत में ईश्वर की सत्ता ही स्वतंत्र और स्वयं भू सत्ता है। ईश्वर के अतिरिक्त संसार में कोई ऐसा नहीं है जो अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता हो। ईश्वर के प्रति आस्था रखने वाला हर व्यक्ति अपनी आपदा–विपदा में ईश्वर का स्मरण अवश्य करता है। कहानी 'लेन' के घायल पति दतूराम के जीवन को लेकर प्रार्थना करती महिंदरी ईश्वर के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुई कहती है कि ''अपने रूष्ट भाग्य को प्रार्थना और मनौतियों से लादती– मानती रही। भला चंगा होकर मरद घर लौटेगा तो वह शर्तिया संतोषी माँ के सोलह शुक्रवार करेंगी, भैरव के मन्दिर में मुंह अंधेरे चुपके से जल चढा आएगी।''[20] लेखिका चित्रा ने कहानी 'बलेड' के ड्राईवर राम खिलावन की ईश्वरीय आस्था को इस प्रकार रेखांकित किया है – '' मेरी धुधुनू .... बटेसुई बाबा की मानता से वरदान में मिली। एक मात्र जीवित तीसरी संतान ... एक बार एडवांस और दे दीजिए, साहब ... रूपये की सख्त जरूरत है, साहब।''[21] परम्पराएं बदल रही है आज का युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर धार्मिक कर्म काण्डों तथा भारतीय संस्कृति को भूलने जो लगा है। इस संदर्भ में लेखिका सेवती कहानी 'विरासत' की नायिका के शब्दों में कहती है – मैं तो समझता हूं तुम लोगों की गीता एक महान देन है। इस पर प्रर्मिला कहती है कि मैं तो ये पूजा पाठ की किताबे पढ़ती नहीं, प्रर्मिला कंधों तक झूलते नरम बालों को नाजुकता से झटका था।''[22]

ईश्वर के प्रति श्रद्धा कभी–कभी इतनी बढ़ जाती है कि उसके दर्शन के लिए बड़ी से बड़ी जौखिम भरी कठिनाईयां भी वह झेलने को तैयार रहता है। मुदगल ने 'गिलिगडु' उपन्यास में उम्र के अन्तिम पडाव को पार करते हुए मार्ग की जटिलता का वर्णन स्वाभाविक ढंग से चत्रित किया है – ''इस उम्र में उन्हें केदारनाथ ले जाना निरापद नहीं। बद्रीनाथ तक सीधी गाडी जाती है। कोई दिक्कत नहीं, कठिनाई आती है। केदारनाथ में तेरह किलोमीटर की दुर्गम चढाई कोई हंसी–ठठ्ठा नहीं ऊपर पहुंचने पर ऑक्सीजन की समस्या हाडकपाती असहाय ठंड में मेह की पा हो गयी है। निमोनिया निश्चित आपात स्थिति में केदारनाथ में उचित इलाज की कोई व्यवस्था नहीं। दुर्घटनाएं सुनने में आती ही रहती है। वृद्ध समेत पालकी के 309 इस हजारों फीट गहरं खड्डे में जा गिरे। लाश बरामद होनी कठिन हो रही है।''[23]

मृत्यु बोध

मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है, जो निश्चित है। जीवन को जीने की चाह तो प्रत्येक प्राणी के हृदय में होती है, परन्तु जीवन की सत्यता अर्थात मृत्यु को कोई पहचानना नहीं चाहता। मृत्यु के सन्दर्भ में अस्तित्ववादियों की मान्यता है कि मृत्यु हमारे जीवन की दुर्घटना नहीं, परन्तु आरम्भ से ही एक ऐसी संभावना है जिसे हम अपने अन्दर ही पालते–पोसते है। निरूपमा सेवती ने एक कहानी ''तुम एक गुलमोहर हो'' में मृत्यु से भयभीत एक प्रेमी के मनोभाव का चित्रण करते हुए लिखा है कि रेस्तरां में ही सही। एक कप कॉपी तुम्हारे साथ पीना चाहता हूँ। जाने जीने की कोई इच्छा भी नहीं रही।''[24]

अस्तित्ववादी व्यक्ति प्रत्येक ऋण का उपयोग करते हुए मृत्यु पूर्व ही अपने जीवन में अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। मृत्यु की वास्तविक व्याख्या को लेखिका मुदगल ने आवां–उपन्यास के पात्र सिद्धार्थ मेहता के शब्दों में उजागर किया है '' मृत्यु जब आयेगी अपना काम करेगी, जीवन जब तक है उसे अपना करम करने देना होगा। जीवन में स्पंदित रहते हुए मृत्यु का विचार मृत्यु की ओर समय से पूर्व अग्रसर होना है। जीवन मिला है तो जी लो, मृत्यु आएगी तब निरप्राण है, लेकिन तुम मूल सत्य से परे ही उसे देखने समझने की

चेष्टा नहीं कर रहे। जीवन में रहते मृत्यु के विषय में सोचना अर्थात प्रसाद में पाए जीवन को लौकिक प्रकार जीना मृत्यु की वास्तविक व्याख्या है।''[25]

वास्तव में व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके अस्तित्व की लो सदैव ऊपर रहती है। इस विषय में श्री माहेश्वरी ने 'आलोचना' पत्रिका में सत्य लिखा है कि ''व्यक्ति नष्ट होता है किन्तु उसके व्यक्तित्व की लौ कभी नहीं बुझती।''[26]

यथार्थ बोध

जीवन और जगत में जो कुछ हो रहा है। साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति का है यथार्थवाद (यथार्थबोध) कहा जाता है। यथार्थबोध अनुभव किया हुआ वह सत्य है जिसकी अनुभूति का सामना प्रत्येक मानवीय अस्तित्व को करना पडता है। यथार्थबोध में अस्तित्ववादी विचारधारा के महत्व को स्पष्ट करते हुए कुमार विमल ने 'आलोचना' पत्रिका में 'अस्तित्वादी सौन्दर्यशास्त्र' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है कि ''अस्तित्ववादी कला जीवन के कटु–रिक्त यथार्थ को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित कर जगत–जीवन की निरर्थकता से मानव–मन को 'निर्भीक निराशावादिता से तरंगित करना चाहती है। इसलिए अस्तित्तवादी कला हमारे जीवन को अकृत्रिम रूप से हमारे सामने रखती है और हमें अपनी नंगी जिन्दगी को रू–ब–रू देखने का साहस देती है''[27]

सत्य यथार्थ का तत्व बोध है और मनुष्य में अनुभव के द्वारा प्रदत्त चेतना के रूप में रहता है। यथार्थ की प्रकृति सत्य है कि अपेक्षा जटिल होती है। चूंकि जो प्रत्यक्ष है वही सत्य है और भोगा हुआ अनुभव ही यथार्थ की श्रेणी में आता है। इसीलिए सत्य सरल है और यथार्थ जटिल। 'आवां' उपन्यास में लेखिका ने देवीशंकर पांडेय की अनुभूति में इसी वास्तविकता को रेखांकित किया है – ''मुझे आत्मशुद्धि के लिए केश–लुंचन की आत्मपीड़क प्रक्रिया अपनानी होगी। किस पोधों को सींचा। पानी तो हर पौधें को चाहिए। पौधें के लिए पानी की आवश्यकता सत्य है। सत्य मुझे सरल लगता है। यथार्थ जटिल''[28] इस प्रकार चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य ने समाज की विसंगतियों के कटु यथार्थ का चित्रण दृष्टिगत हुआ है।

क्षण बोध

क्षण के प्रति अस्तित्ववादी लेखकों का विशेष आग्रह है। इस संदर्भ में अज्ञेय अस्तित्ववादियों की चर्चा करते हुए 'आत्मनेपद' में लिखते हैं कि 'क्षण' के इस आग्रह का एक पक्ष यूरोप के साहित्यिक अस्तित्ववाद में पाया जाता है मृत्यु के साथ उसके लगाव के मूल में एक बात यह है कि मृत्यु साक्षात्कार के क्षण में ही जीवन की चरम अथवा तीव्रतम अनुभूति होती है – जीवन का चरम आग्रह इसी क्षण प्रकट होता है।''[29] चित्रा मुद्गल ने 'आवां' उपन्यास में समय की महत्ता का प्रतिपादन कुछ इस प्रकार किया है– ''समय परखता है व्यक्ति के मनोबल को। उसकी संकल्पता को छोटे–छोटे अवसरों में उपलब्ध हो। हो सकता है, अपनी कसौटी पर कस रहा है वह तुम सबको''[30]

समय वह मरर्हम है जो बडे से बडे घाव भर देता है। निरूपमा सेवती ने 'ठहरी हुई खरोंच' की नायिका के नायक से इस तथ्य की पुष्टि इस प्रकार की है '' कि इस तरह क्षण गुजर जाने के बाद नॉर्मल हो जाता है फिर बर्दाशत करने की सभ्यता होंठों पर मुस्कुरानें लगती है। हम भूल जाना चाहते है उन पुराने क्षणों को मानों वह सब वहम भर था''[31] इस तरह क्षण राजमर्रा की जिंदगी को भोगते हुए समाज में अपने महत्व और विवशता को उजागर करता है। कथाकार सेवाराम यात्री भोगे हुए क्षणों की अभिव्यक्ति को इस प्रकार प्रकट करते हैं – रोजमर्रा की जिंदगी बीते हुए औसत प्रत्येक क्षण सुरक्षा, अपमान, आर्थिक–सामाजिक शोषण और छल का शिकार होता है। उसकी विवशताओं और दूसरी सीमाओं में लेखक उसके साथ शामिल है।''[32]

भय एवं संत्रास

भय आज संवेदनाओं के धरातल पर व्यक्ति के जीवन में संत्रास और मृत्यु की उद्‌भावना करता है। मनुष्य का मन बहुत ही संवेदनशील होता है, किन्तु किसी विशेष परिस्थितिवश उसके साथ कुछ ऐसी विचित्र घटनाएं घट जाती है जिससे उसकी मानसिकता को आघात पहुंचता है जब उसके मन की यह वेदना अधिक गहराई तक पहुंचती है तब यही वेदना संत्रास के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं अतः संत्रास उस मानसिक पीडा का नाम है जिसमें व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु अनचाही परिस्थितियों के बीच जीने के लिए विवश है। भय एवं संत्रास व्यक्ति के चेतन–अचेतन मन पर एक गहन तनाव के रूप में स्पष्ट दिखायी पड़ता है। कहानी 'अग्निरेखा' अस्तित्वबोध की विसंगतियों को स्वाभाविक ढंग से दर्शाती है। कहानी की नायिका मनु विवाहित है जो प्रथम प्रसव पीडा के समय अपने शरीर का एक जीवन्त हिस्सा खो बैठती है। मनु एक अस्तित्ववादी नारी है वह अपनी आकस्मिक अपंगता से तो इतनी पीडित नहीं है जितना अपने अस्तित्व के टूटने–बिखरने से संत्रस्त है। वह कहती है – ''लगता है, शरीर से कहीं ज्यादा दिमाग से अपाहिज हो चुकी है, जो शायद अब कभी उसे इस काबिल नहीं छोडेगा कि वह सही चीज को सही मायनों में सोच सके जी सके, उदार दृष्टिकोण अपना सके''[33] 'लेन' कहानी में घायल दत्तूराम की बिगडती स्थिति से भयभीत पत्नी महिंदरी की मनः स्थिति को इस प्रकार दर्शाया है कि ''उन कातर सहमी आँखों में वप्त आतंक मौत की काली परछाईयों–सा डैने फडफडता डोल रहा है और मरद का सूखा चेहरा दहशत और आशंका से सिकुड रहा है, सिकुडता ही जा रहा है'' [34]

अलगाव, निराशा और अवसाद

अलगाव के अनेक समानार्थों शब्द है जैसे– अलग होना, पृथकता, दूर होना, लगाव या स्नेह समाप्त हो जाना। भौतिकवादी एवं महानगरीय जीवन शैली ने व्यक्ति को घर परिवार एवं समाज से काट दिया है। फलतः तनाव जीवन पर हावी हो रहा है। कहानी पानी का रंग की गुल जो एक घनाढय परिवार की बेटी है, ने ऐसे पुरूष से विवाह किया जो उसे पीडा के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सका। गुल अपनी सहेली से अलगाव के कारण को व्यक्त करती हुई कहती है '' मेरी हड्डियों में मार खाने लायक दम अब कहां बचा है जो मैं दिल्ली में रहूं... और फिर मेरे उस के बीच कभी पुल बंधा ही नहीं,

अकेला एक–तरफा प्रेम पैसे की तरह दिल को भी लहुलुहान कर देता है''[35]

निराशा और अवसाद

निराशा और अवसाद शब्द 'उदासी' के पर्याय रूप में प्रयुक्त होकर पराजय या शोक की भाव दशा का बोध कराते हैं। उदासी में आशा की समाप्ति का भाव निहित है और जो निराशा में दीर्घकालीन शोक की स्थिति में दिखायी पडती है। चित्रा मुद्गल ने अपने कथा–साहित्य में दीर्घकालीन शोक की स्थिति में दिखायी पडती है। चित्रा मुद्गल ने अपने कथा–साहित्य में स्वीकार किया है कि मृत्यु का खतरा ही मानव अस्तित्व के लिए संकट खडा नहीं करता अपितु मनुष्य के विचारों और निर्णय की मृत्यु उसके समक्ष भयानक रूप में विद्यमान है जिसके परिणाम स्वरूप मानव आज उस अंधकारमय सुरंग में जा बैठा, जहां उसे रिक्तता, निराशा और हताशा का अनुभव होता है। 'आवां' उपन्यास की नायिका नमिता इसी निराशाजनक अनुभूति को प्रकट करती है कि – ''दुःस्वप्नों की कोई एक सुरंग नहीं। कई–कई सुरंगें हैं बारूद–बिछी, उसके छोटे से जीवन में जिनमें हुए विस्फोट ने उसके विश्वास को चिंधी–चिंधी मौत दे हवा में बखेर दिया है। अस्तित्व के खंडित टुकडों–सा''[36] कहानी 'अनुबन्ध' का नायक नरेश एक फिल्म निर्माता है किन्तु उसकी फिल्म प्रदर्शित होने से पूर्व की अनफिट हो गई और इस तरह उसकी आशा, निराशा में बदल गई। वह पत्नी जानकी से कहता है कि ''आशा तो यहीं बंधी थी कि फिल्म प्रदर्शित होते ही उसके समक्ष अनुबंधों का तांता लग जाएगा... किन्तु सोचा हुआ सब धरा रह गया''[37]।

अवसाद जीवन की वह असाध्य मानसिक यंत्रणा है जिसमें व्यक्ति स्वयं को ठगा महसूस करता है। उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की नीता मूल्य विघटन के कारण अपने अस्तित्व को खंडित होता देख गहन अवसाद में घिर जाती है। वह कहती है कि ''अपने भीतर अपने को तिल–तिलकर मरता महसूस करना कितनी असाध्य यंत्रणा है। कुंठा से मुक्त हो स्वयं को बहुत संभालने और सहेजने की कोशिश की, लेकिन असफल रही। शिखर और धरातल के मध्य एक फासला होता है, दीर्घ! जो अकस्मात खत्म होते ही रीढ को साबुत नहीं रहने देता। बीच में सीढियां नहीं होती न। वे बनाई ही नहीं गई कभी। बनाई गई होती तो वह फासला उन सीढ़ियों पर डग भरता उतरता–तब पाव में उतराव की थकान ही हिस्से में होती... जिजीविषा न टूटती ''[38]।

कुण्ठा और शून्यता

सृष्टि के विकास के साथ ही मानव मन की इच्छाओं और आकांक्षाओं का भी विकास हुआ है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति की अपनी इच्छाएं एवं आकांक्षाएं होती है। यह सत्य है कि आकांक्षाएं तो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में होती है परन्तु उन आकांक्षाओं या महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति किसी– किसी की हो पाती है। जब व्यक्तिगत अक्षमताओं एवं असमर्थताओं के कारण समस्त महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एक साथ सम्भव न होने के कारण उसे विफलता का सामना करना पड़ता है । तब व्यक्ति का हृदय कुठित हो जाता है। कुंठा के विषय में डॉ० कलावती प्रकाश का विचार है कि– "जब कोई व्यक्ति कुछ करना चाहता है परन्तु उसका अहम तथा पराहम उसे ऐसा करने से रोकता है तो वह मनुष्य की आन्तरिक कुंठा होती है ''[39] अतः मानव की अतृप्त आकांक्षाएं और दमित इच्छाओं के कारण ही उसके मन में उत्पन्न हुई प्रवृत्ति ही कुंठा का रूप धारण कर लेती है । इसलिए कुंठा रूग्ण मनः स्थिति का द्योतक है । जिसमें दृष्टि का अभाव निहित रहता है। कुंठा आधुनिक युग की प्रमुख मनोवृत्ति बनती जा रही है। 'एक काली एक सफेद' कहानी की नायिका का दाम्पत्य जीवन अंग्रेजी भाषा न सीख पाने के कारण कुंठित है। वह अपनी बेटी को आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर भी उसे अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढाने की हठ करती हैं विशिष्टता का होवा हर समय उसे सालता रहता हैं पत्नी की भीतरी कुंठा को व्यक्त करते हुए पति रवि कहता है ''सीख इसलिए नहीं पायी कि उसकी विशिष्टता का हौवा सदैव तुम्हें आतंकित किये रहा। मैं सीख पाया, क्योंकि मुझ पर हौवा हावी न हुआ। जाहिर है, कुहू मैं या तुम–कोई भी हो सकती है। तुम सिर्फ अपने मौहल्ले में अपनी नाक ऊंची रखाने के लिए कुहू को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाना चाह रही है। यह भाषा की नहीं, स्टेट्स की कुंठा है''[40]

कहानी 'अपने आप' की नीना का पति फोटोग्राफर है। उसे हर चीज में सौंदर्य चाहिए। नीना से विवाह ही उसने उसकी सम्पत्ति के कारण किया। कुंठत, नीना अपनी बहन से कुंठित है ''मिनल ... मुझे पहले तो कभी लगता था राजीव के घोडे दौड समाप्त करके अपने अस्तबल में लौट आयेंगे, परन्तु अब शायद वह दूर निकल गये है। मैं ही असमर्थ थी'' वास्तविकता यही है कि कुंठा से मनुष्य में शून्यता पसरती है और शून्यता का प्रभाव स्वयं में रिक्तता का बोध कराता है। सच में शून्यता एक ऐसा कृत है जिसमें साथ लगता है उसे अपने दायरे में लेता है''[41] कहानी 'अपनी वापसी' की शकुन महानगरीय जीवन में अपनी रूचि–भिन्नता के कारण शून्यता का बोध अनुभव करती है कि – ''पता नहीं, बच्चों के मन में यह धारणा कैसे और कब बैठ गई कि पापा समय के साथ चलने, मिलने–जुलने वालों में से हैं। उसका व्यक्तित्व लचीलेपन की इस विशिष्टता से एकदम खारिज है। न वह उनके संग चल सकती है, न सोच सकती है न बोल–बतिया सकती है। क्यों सभी ने उसे चेतना शून्य मान–समझ लिया? ''[42]

अध्ययन का उद्देश्य

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। अतः समाज की सभी गतिविधियों साहित्य में निहित है। आज मानव अस्तित्व का संकट सर्वप्रथम स्थान पर फलतः मानव मन–मस्तिष्क में विभिन्न विकृतियों का समावेश हो गया। जैसे– स्वतंत्रय, घुटन, संत्रास, मृत्युबोध, क्षणबोध, मूल्य, नवाभिव्यक्ति के अतिरिक्त विभिन्न भाव–बोध के साथ अस्तित्ववादी आयामों के रुप में हिन्दी कथा–लेखन में परिलक्षित हुई है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इन्हीं आयामों को बोध द्वारा वर्णित करना है।

निष्कर्ष

आधुनिक हिन्दी कथा लेखन में अस्तित्वबोध के अनेकानेक रूपों की अभिव्यक्ति सशक्त रूप में विद्यमान है। अस्तित्ववाद मानव–अस्तित्व और उसकी समस्याओं का आत्मगत दर्शन है। फिरभी मानव के मन मस्तिष्क की प्रत्येक गतिविधि की छाप हमें इसमें दृष्टिगोचर हुई है। अस्तित्वबोध के सभी प्रेरक तत्व आधुनिक साहित्य एवं समाज के प्रमुख सोपान है जिनको विश्लेषित करना अपरिहार्य है। अतः उपर्युक्त विवेचन के विश्लेषण के पश्चात कहा जा सकता है कि अस्तित्ववाद जितना मानव के लिए जरूरी है उतना ही साहित्य के लिए भी प्रासंगिक है।

अंत टिप्पणी

1. *मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोश, संपा0 धर्मपाल सैनी पृ0–186–188*
2. *लाल चन्द गुप्त मंगल, अस्तित्ववादः दार्शनिक एवं साहित्यिक, पृष्ठभूमि–15*
3. *योगेन्द्र शास्त्रीः अस्तित्ववाद कीर्केगार्ड से कामू तक, पृ0–2*
4. *डॉ0 धीरेन्द्र वर्माः हिन्दी शब्दकोश भाग एक, पृ0–73*
5. *डॉ0 विजय मोहन सिंहः सार्त्र असम्भव विकल्पों की तलाश है, पृ0–167*
6. Britannica Conaise Encyclopidia Page- 635
7. *डॉ0 शिवकुमार सिंहः आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ0–69*
8. *प्रभाकर माचवेः अस्तित्ववाद पक्ष और विपक्ष, पृ0–11*
9. *राम विलास शर्माः नई कविता और अस्तित्ववाद, पृ0–105*
10. *नरेन्द्र सिंहः अस्तित्ववाद की पृष्ठभूमि , पृ0–34*
11. *निरूपमा सेवतीः आंतकबीज : 'सबमे से एक, पृ0–09*
12. *चित्रा मुद्गलः आंवा, पृ0–143*
13. *मृदुला गर्गः दुनिया का कायदा '' हरी बिंदी'', पृ0–25*
14. *डॉ0 विनयः समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ0–5*
15. *चित्रा मुद्गलः एक जमीन अपनी, पृ0–218*
16. *निरूपमा सेवतीः आंतकबीज : बुद्धमुष्टि, पृ0–45*
17. *डॉ0 इन्दु रश्मिः नई कहानी का स्वरूप विवेचक, पृ0–74*
18. *चित्रा मुद्गलः चर्चित कहानियां, पाली का आदमी, पृ0–110*
19. *चित्रा मुद्गलः एक जमीन अपनी, पृ0–83–84*
20. *चित्रा मुद्गल, भूख, लेन, पृ0–30*
21. *चित्रा मुद्गल, भूख–ब्लेड, पृ0–84*
22. *निरूपमा सेवतीः काले खरगोशः विरासत पृ0–46*
23. *चित्रा मुद्गलः गिलिगडु, पृ0–68*
24. *निरूपमा सेवतीः दूसरा जहरः तुम एक गुलमोहर हो, पृ0–18*
25. *चित्रा मुद्गलः आवां, पृ0–436*
26. *श्री माहेश्वरीः आलोचनाः जनवरी–फरवरी नवांक 24, पृ0–91*
27. *कुमार विमलः अस्त्विवादी सौंदर्य शास्त्रः आलोचना अप्रैल–जून 1939, पृ0–11*
28. *चित्रा मुद्गलः आवां, पृ0–79*
29. *अज्ञेयः आत्मनेपद, पृ0–8*
30. *चित्रा मुद्गलः आवां, पृ0–50*
31. *निरूपमा सेवतीः खामोशी को पीते हुए ठहरी हुई खरोच, पृ0–50*
32. *सेवाराम यात्रीः सारिका, जुलाई 1975, पृ0–75*
33. *चित्रा मुद्गलः मामला आगे बढेगा अभी, अग्नि रेखा, पृ0–35*
34. *चित्रा मुद्गलः भूख, लेन, पृ0–31*
35. *कुसुम अंसलः वह आया था, पानी का रंग, पृ0–54*
36. *चित्रा मुद्गलः आवां, पृ0– 232*
37. *चित्रा मुद्गलः केंचुल, अनुबंध, पृ0–28*
38. *चित्रा मुद्गलः एक जमीन अपनी, पृ0–271–272*
39. *डॉ0 कलवती प्रकाशः महासमरोत्तर हिन्दी उपन्यासों में जीवन दर्शन, पृ0– 258*
40. *चित्रा मुद्गलः लपटे, एक काली एक सफेद, पृ0–84*
41. *कुसुम अंसलः वह आया था, उसके होंठों का चुप, पृ0–11*
42. *चित्रा मुद्गलः चर्चित कहानियां, अपनी वापसी, पृ0–27*